वैदिक दर्शनवाणी

लेखक एवं प्रकाशक

धर्मपाल कपूर

बी.ए. ऑनर्स, एम.ए.

कोठी नं. 1135, सैक्टर 11,
पंचकूला-134112 (हरियाणा)
फोन : 0172-2567845
मोबाइल : 9356301618

संस्करण : 2017
प्रतियाँ :

धर्मपाल कपूर
बी.ए. ऑनर्स, एम.ए.
कोठी नं. 1135, सैक्टर 11, पंचकूला
फोन : 0172-2567845
मोबाइल : 9356301618

टंकण एवं साजसज्जा : **अभिनव इंटरप्राइजिज, मो. 94683 40497**
मुद्रक :

भूमिका

दर्शन शब्द का शाब्दिक अर्थ है जिसके द्वारा देखा जाये। भारतीय ऋषियों ने अपने चिंतन से जिन सत्यों की खोज करके प्रत्यक्ष देखा, उन्हीं सत्यों को उन्होंने संसार के कल्याण के लिये सारे संसार के सम्मुख प्रस्तुत किया। उस सच्ची शांति को मानव केवल तुच्छ भोग-जीवन के स्वार्थमय वातावरण से ऊपर उठकर परमार्थ चिन्तन द्वारा ही पा सकता है। भारतीय दर्शन हमको उसी परमार्थ चिन्तन की ओर लगाते हैं। अतः उनका अध्ययन मानवमात्र के लिये परमावश्यक है।

वेदों, उपनिषदों, शास्त्रों आदि वैदिक वाङ्मय के ग्रंथों की भाँति दर्शन भी संस्कृत साहित्य की अमूल्य निधि है। इनको उपांग या शास्त्र के नाम से भी पुकारा जाता है। संसार की किसी भी भाषा में इनकी कोटि के सूत्र ग्रंथ नहीं हैं। इनके अध्ययन से बुद्धि का पूर्ण विकास होता है। ये ग्रंथ ज्ञानकाण्ड के परम सहायक हैं। ये सारी सृष्टिविद्या का प्रमाण और तर्क के आधार पर सूत्र रूप में वर्णन करते हैं। मानव जीवन का अंतिम लक्ष्य मोक्ष है। उस मोक्ष का स्वरूप क्या है तथा उस तक कैसे पहुँचा जा सकता है। इसी का सूक्ष्म रूप से विवेचन करने वाले शास्त्रों को दर्शन के नाम से पुकारा जाता है। इसमें मुख्यतः जीव, जगत् और जगदीश का सूक्ष्म रूप से विचार किया गया है। महर्षि दयानंद ने अपनी पुस्तक 'आर्य्योदेश्य- रत्नमाला' में उपांग की परिभाषा करते हुए लिखा है–

जो ऋषिमुनिकृत मीमांसा, वैशेषिक, न्याय, योग, सांख्य और वेदांत छः शास्त्र हैं इनको उपांग कहते हैं। पृष्ठ 99

महर्षि दयानंद ने षट्दर्शनों के प्रतिपाद्य विषयों का अवलोकन वेदों के आधार पर किया है ओर यह पाया है कि इनमें परस्पर विरोध

होना सम्भव नहीं है क्योंकि इन सब का आदि स्रोत वेद ही है। भारतीय दर्शनों के मुख्य निम्नलिखित दो भेद हैं–

(1) आस्तिक दर्शन – ये छः दर्शन हैं जोकि वेदानुकूल हैं। (क) योग दर्शन, (ख) वैशेषिक दर्शन, (ग) सांख्य दर्शन, (घ) न्याय दर्शन, (ङ) वेदांत दर्शन और (च) मीमांसा दर्शन इन दर्शनों में 4832 सूत्र हैं।

(2) नास्तिक दर्शन – ये निम्नलिखित तीन दर्शन हैं जोकि वेदानुकूल नहीं है। (क) चार्वाक दर्शन, (ख) बौद्ध दर्शन, (ग) जैन दर्शन।

इस ग्रंथ में मैंने पाखंडखण्डिनी पताका लहरा कर इसका वैदिकीकरण कर दिया है। इसके अतिरिक्त इसमें छः दर्शनों के विभिन्न अत्यंत महत्वपूर्ण 25 सूत्रों को अर्थ सहित प्रस्तुत किया गया है। 25 प्रश्नोत्तरों का एक अध्याय भी जोड़ कर इसको सुन्दर व आकर्षक बना दिया गया ताकि पाठकगण और विशेषतः बच्चे इसका अध्ययन करके भारतीय संस्कृति से परिचित हो सकें। मैंने प्रस्तुत ग्रंथ की रचना सच्ची लगन और कड़ी मेहनत से की है। अतः पाठक गण को यह अवश्य ही पसंद आयेगी और इसके अध्ययन से उनके ज्ञान में भी अवश्य वृद्धि होगी।

प्रस्तुत पुस्तक के लिखने में मुझे सर्वश्री डॉ० जगदीश शास्त्री, नरेन्द्र आहूजा 'विवेक,' रोशन लाल अग्रवाल, जय किशन, नरेश बंसल ने सहयोग प्रदान किया है। अतः इन मित्रों का स्तवन न करना मेरी कृतघ्नता होगी। विशेषतः डॉ० जगदीश शास्त्री जी ने इस पुस्तक के सम्पादन में विशेष योगदान दिया है। मुझे यह कहने में तनिक भी संकोच नहीं है कि उनके बिना प्रस्तुत पुस्तक का वर्तमान रूप में

संयोजन न हो पाता । मैं उन सभी लेखकों एवं कृतिकर्त्ताओं का भी अत्यंत धन्यवादी हूँ जिनकी कृतियों से संदर्भ उद्धृत किये गये हैं ।

जिस अचिंत्य शक्ति प्रभु की असीम अनुकम्पा से मैं अपने संकल्प को मूर्तरूप दे सका उसका भी मैं कोटि-कोटि धन्यवाद करता हूँ । मैंने प्रस्तुत पुस्तक के लिखने में पूर्ण सावधानी बरती है । परन्तु अल्पज्ञ एवं अपूर्ण होने के कारण फिर भी यदि कोई त्रुटि रह गई हो तो पाठकगण से क्षमा चाहूँगा ।

धर्म पाल कपूर

तिथि : 22.3.2016

(धर्मपाल कपूर)
बी.ए. ऑनर्स, एम.ए.
कोठी नं. 1135, सैक्टर 11, पंचकूला
फोन : 0172-2567845
मोबाइल : 0-9356301618

प्रस्तावना

वैदिक साहित्य की गणना में वेद-शास्त्र सहचर शब्द के रूप में प्रयुक्त होता है। तात्पर्य यह है कि चार वेदों के पश्चात् छः शास्त्रों को विशेष महत्व दिया गया है। छः शास्त्रों को दर्शन ग्रंथ या दर्शन शास्त्र भी कहते हैं। पर दुर्भाग्य है धरती के मनुष्यों का जो न वेद को जानते-पढ़ते हैं और न शास्त्रों को। भारतीय समाज व सनातन धर्मियों का उनसे भी बड़ा दुर्भाग्य है जो सनातन धर्मी होते हुए भी अपने वेद शास्त्र न रखते हैं न पढ़ते हैं दर्शन शास्त्र वेद के सिद्धान्त को सूत्र रूप में प्रस्तुत करते हैं। इन सूत्रों को पढ़कर समझना सामान्य जनता के लिए संभव नहीं है। अतः अल्पज्ञ जनता के लिए इनकी विस्तृत व्याख्याएं की गई है। पर वर्तमान अनभिज्ञ लोगों के लिए उससे संक्षिप्त सुगम, परिचयात्मक पुस्तिका की आवश्यकता होती है। 'वैदिक दर्शनवाणी' इसी आवश्यकता की पूर्ति करती है। इससे लोगों को अपने दर्शन शास्त्रों के विषय में संक्षिप्त जानकारी मिलेगी तथ मूलपुस्तक सविस्तार पढ़ने की जिज्ञासा होगी।

इस पुस्तक में वेदान्त दर्शन का जो परिचय दिया है वह वेदान्त दर्शन का नहीं अपितु वेदान्त दर्शन के विषय में नवीन वेदान्त की काल्पनिक मान्यताओं का है। अतः पाठक वेदान्त के विषय में मिथ्या धारणा न बनाएं। इस पुस्तक के लेखक श्री धर्मपाल कपूर जी स्वयं अविवाहित रह कर अपना पूरा तन, मन, धन वैदिक साहित्य के लेखन प्रकाशन व वितरण में लगा रहे हैं। समाज को इसके लिए कृतज्ञ होना चाहिए। हम इनके स्वस्थ व दीर्घ जीवन की कामना करते हैं।

डॉ० जगदीश शास्त्री (वैदिक प्रवक्ता)
एम.ए., पी-एच.डी.
मकान नं. 875, गांव किशनगढ़
मनीमाजरा, चण्डीगढ़।
मोबाइल : 0-9417621632

विशेष सूचना

1. स्वाध्याय, मनन और आत्मसात् ।
2. पाठकगण पुस्तक पढ़ने के पश्चात् किसी भी स्वाध्यायशील मित्र को इसे देने की कृपा करें ।
3. कोई भी जिज्ञासु अपनी इच्छानुसार इसकी प्रतियाँ फोटोस्टेट करवा कर स्वाध्यायशील मित्रों में प्रचार-प्रसार के लिये बाँट सकता है ।
4. पुस्तक केवल प्रचारार्थ लिखी गई है और सदुपयोग ही इसका मूल्य है ।
5. सर्वाधिकार लेखकाधीन ।

धर्मपाल कपूर
बी.ए. ऑनर्स, एम.ए.
कोठी नं. 1135, सैक्टर 11,
पंचकूला-134112 (हरियाणा)
फोन : 0172-2567845
मोबाइल : 9356301618

विषयसूची

क्र.सं.	विषय	पृष्ठ
1.	योगदर्शन	1
2.	वैशेषिक दर्शन (पदार्थ शास्त्र)	11
3.	सांख्य दर्शन	15
4.	न्याय दर्शन	20
5.	वेदांत दर्शन	25
6.	मीमांसा दर्शन	29
7.	दर्शनों के 25 अत्यंत महत्वपूर्ण सूत्र	33
8.	दर्शनप्रश्नोत्तरी	36

1. योग दर्शन

इसके रचयिता महर्षि पतंजलि हैं। इसमें केवल 195 सूत्र हैं। इस प्रकार यह सब दर्शनों से छोटा है। वस्तुतः यह प्राचीन दर्शन है। यह प्राण विद्या के नाम से प्रसिद्ध था। इस पर सब दर्शनों से अधिक ग्रंथ लिखे गये। सभी सम्प्रदायों ने इसको अपनाया। इस प्रकार इसका सबसे अधिक प्रचार भी हुआ।

योग का अर्थ है – **चित्तवृत्ति का पूर्णतः निरोध।** चित्त से यहाँ पर अभिप्राय मन, बुद्धि एवं अहंकार से है। सत्त्वगुणयुक्त प्रकृति से चित्त की उत्पत्ति होती है। अतः प्रकृति के विकारों में सबसे अधिक सत्वगुणी चित्त ही है। प्रकृति के धर्म जड़ता एवं परिवर्तनशीलता चित्त में भी रहते हैं। चित्त भी तीन प्रकार का होता है–(1) सत्वप्रधान, (2) रजोप्रधान, (3) तमोगुण प्रधान। स्वामी रामदेव जी योग की परिभाषा करते हुए लिखते हैं–

> **योग समाधि है, योग आत्मदर्शन, आत्म साक्षात्कार या आत्मबोध का आध्यात्मिक दर्शन है। योग जीवन दर्शन है। योग जीवन-प्रबन्धन है। योग आत्मानुशासन है। योग मात्र शारीरिक व्यायाम नहीं अपितु सम्पूर्ण जीवन शैली है। योग चित्त को निर्मल व निर्बीज करने की आध्यात्मिक विद्या है। योग एक सम्पूर्ण चिकित्सा विज्ञान विद्या है। योग व्यक्ति समाज, राष्ट्र व विश्व की सम्पूर्ण समस्याओं का समाधान है।**
>
> –जीवन दर्शन पृ० 63-64

मन की विभिन्न 5 अवस्थाएं–

(1) मूढ़मन :– ऐसा मन मोह-माया में फँसा रहता है और यह विवेक शून्य होता है। इसमें तमोगुण की प्रधानता होती है।

(2) क्षिप्तमन :–ऐसा मन सुख-दुःख में फंसा रहता है और यह चंचल भी होता है और क्षिप्त दशा में डाँवाडोल रहता है। इसमें रजोगुण की प्रधानता रहती है।

(3) विक्षिप्तमन :–इसमें मन सुख के साधनों की ओर अधिक झुका रहता है। यह मध्य की दशा है। इसमें मन दोनों ओर जाता है। इसमें सत्वगुण की प्रधानता रहती है।

(4) एकाग्रमन :–जब बाहरी वृत्तियों से हटकर मन एक वस्तु पर एकाग्र हो जाता है। तब उसे एकाग्रमन कहलाता है।

(5) निरुद्धमन :–सत्वगुण की अधिकता के कारण समाधि में मन अधिक उपयोगी हो जाता है। समस्त वृत्तियों एवं संस्कारों का सर्वथा निरोध हो जाने पर मन निरुद्ध कहलाता है।

मन की वृत्तियाँ

मानव को किसी वस्तु के स्वरूप का ज्ञान मन के जिन परिवर्तनों से होता है, उन्हें वृत्तियों के नाम से पुकारा जाता है। ये 5 हैं – प्रमाण, विपर्यय, विकल्प, निन्द्रा एवं स्मृति। प्रमाण 3 प्रकार का होता है – प्रत्यक्ष, अनुमान एवं शब्द। प्रमाण का अर्थ है – सच्चा ज्ञान। किसी वस्तु के झूठे ज्ञान को विपर्यय या संशय कहा जाता है। शब्द के ज्ञानमात्र से उत्पन्न होने वाले, परन्तु वस्तु की वास्तविकता से शून्य ज्ञान को विकल्प कहते हैं। जैसे यदि किसी ने कहा– गधे के सींग। इन शब्दों से अर्थ तो निकलता है परन्तु वास्तविकता इसमें बिल्कुल ही नहीं है। तम की अधिकता के सहारे रहने वाली वृत्ति को निद्रा के नाम से पुकारा जाता है। स्मृति का अर्थ है–अनुभव किये हुए विषयों का बिना परिवर्तन के उसी रूप में याद करना।

संस्कार

जब मन की वृत्तियाँ उत्पन्न होकर मन में ही विलीन हो जाती हैं तब वे बिल्कुल नष्ट नहीं हो जाती हैं। अपितु सूक्ष्म रूप में रह जाती

हैं, बस वृत्तियों के इसी सूक्ष्म रूप को संस्कार नाम से पुकारा जाता है। ये संस्कार ही समय पर स्थूल रूप धारण कर लेते हैं और वृत्तियां बन जाती हैं। इस प्रकार वृत्तियों एवं संस्कारों का आपस में गंभीर संबंध होता है। वृत्तियों से संस्कार एवं संस्कार से वृत्तियाँ पैदा होती है। जैसे वृक्ष के काट देने पर पृथ्वी में उसकी जड़ रह जाती है। वही समय पर फिर हरी-भरी होकर वृक्ष का रूप धारण कर लेती है। पुनः वृक्ष के काट देने पर जड़े ही रह जाती हैं, वैसे ही वृत्तियों एवं संस्कारों को योग के द्वारा रोका जाता है। निष्काम कर्म में संस्कार और वासना का अभाव होता है। संस्कार 5 प्रकार के होते हैं– (1) आत्मा के मूल संस्कार (2) पूर्वजन्म के संस्कार (3) माता-पिता के संस्कार (4) संगति के संस्कार (5) दृढ़ता के संस्कार।

योग के भेद

योग के दो भेद होते हैं–(1) सम्प्रज्ञात (2) असम्प्रज्ञात

जिस समय अन्य वृत्तियो के क्षीण होने पर मन एकाग्र दशा में एक वस्तु के निरंतर ध्यान में लीन हो जाता है, तब सम्प्रज्ञात योग कहलाता है। इससे प्रज्ञा का आविर्भाव होता है। अन्य वृत्तियों के रोकने से उत्पन्न प्रज्ञा को आखिर रोकना आवश्यक है। यह प्रज्ञा भी तो मन की एक वृत्ति ही है। इसके रोकने पर समस्त वृत्तियाँ रुक जाती हैं। यह असम्प्रज्ञात योग के नाम से पुकारा जाता है। इसी प्रकार वृत्तियों को रोककर एक वस्तु में मन को लीन करना सम्प्रज्ञात योग के नाम से पुकारा जाता है एवं सभी वृत्तियों से मन को रोक लेने का नाम ही असम्प्रज्ञात योग है।

क्लेश

योग दर्शन का उद्देश्य क्लेशों को दूर करना ही है। ये क्लेश मन में दिन-रात भरे रहते हैं। जिससे मन कभी एकाग्र हो ही नहीं सकता। इसके हटने पर मन योग में अग्रसर हो सकता है। ये सब विघ्नरूप हैं परन्तु ये भी अज्ञान से ही पैदा होते हैं। अतः ये मिथ्या ज्ञानरूप ही हैं।

इनकी स्थिति वास्तविक नहीं है । ये 5 क्लेश हैं–

(1) अविद्या :–अनित्य वस्तु को नित्य, अपवित्र को पवित्र, दुःख को सुख और जो आत्मा नहीं उसे आत्मा समझने का नाम ही अविद्या है ।

(2) अस्मिता :–पुरुष एवं बुद्धि को एक मान लेने का नाम अस्मिता (अहंभाव) है ।

(3) राग :– सुख पैदा करने वाली चीजों के प्रति जो लोभ होता है वही राग है ।

(4) द्वेष :–किसी अन्य व्यक्ति के अहित की भावना को द्वेष कहा जाता है ।

(5) अभिनिवेश :–मृत्यु डर का नाम अभिनिवेश है ।

योग के अंग–

इन क्लेशों की निवृत्ति का साधन है–विवेक । इसकी प्राप्ति के लिए लेखक ने निम्नलिखित 8 अंग बतलाये हैं ।

1. यम :–इसका अर्थ है संयम (अनुशासन) । ये अधोलिखित 5 प्रकार के हैं ।

(1) अहिंसा :–इसका अर्थ है कभी किसी व्यक्ति का बुरा न करना । शत्रुता रखने वाला दूसरे की जितनी हानि करता है उतनी स्वयं भी करता है । न्यायपूर्वक दण्ड देना अहिंसा है परन्तु अन्यायपूर्ण दण्ड देना हिंसा है । इसका पालन मन, वचन एवं कर्म के स्तर पर होना चाहिए ।

(2) सत्य :–इसका अर्थ है कि मन, वचन और कर्म में समानता होना ।

(3) अस्तेय :–इसका अर्थ है मन, वचन और कर्म से चोरी न करना ।

(4) ब्रह्मचर्य :– इसका अर्थ है इन्द्रियों का संयम ।

(5) अपरिग्रह :–अनावश्यक वस्तुओं का संग्रह न करना ।

अतएव संतुष्टि एकमात्र साधन है । अपनी आवश्यकताओं को सीमित रखना एवं जो वस्तुएं अनिवार्य हैं उन्हें बटोरना नहीं । ऐसा संयमी अभ्यास स्थिर सुख प्रदान करता है जिससे जीवन में संगीत एवं लयबद्धता आ जाती है । परन्तु इस सबका यह अर्थ नहीं कि आप मूल आवश्यकताओं की पूर्ति भी न करें, परम कंगाली में रहे । निवास के साधन, स्वास्थ्य, सुरक्षा, शिक्षा एवं अन्य जीवन पोषक अनिवार्य संसाधन तो जुटाना ही पड़ेगा ।

2. नियम :–ये भी 5 प्रकार के हैं । ये व्यक्ति के अपने लिये होते हैं ।

(1) शौच :–इस का अर्थ है शरीर एवं मन को शुद्ध रखना । शुद्धि भी दो प्रकार की होती है ।

(क) शारीरिक शुद्धि :–इसका अर्थ है कि प्रत्येक व्यक्ति को अपने शरीर को शुद्ध रखना चाहिए । यह एक साधारण शुद्धि है । अतः योग ऋषि स्वामी रामदेव जी लिखते हैं–

ब्रह्मचर्य का पालन करके ओजस्वी, तेजस्वी, बुद्धिमान् बलवान् एवं पराक्रमी बनकर सबसे दिव्य प्रेम करते हुए सेवा, परोपकार एवं करुणा आदि से अपने जीवन को सुन्दर बनाओ ।

–योग साधना एवं योग चिकित्सा रहस्य (पृ० 11)

योगी पुरुष को न तो चोरी करना चाहिए, न ही किसी से करवानी चाहिए । अपितु भगवान ने जो कुछ प्रदान किया है, उसमें सन्तुष्ट एवं आनन्दित रहना चाहिए ।

–योग साधना एवं योग चिकित्सा रहस्य (पृ० 10)

मनु महाराज लिखते हैं–

अद्भिर्गात्राणि शुध्यन्ति, मनः सत्यने शुध्यति ।
विद्यातपोभ्यां भूतात्मा, बुद्धिर्ज्ञानेन शुध्यति ।।

–मनुस्मृति 5.101

जल से शरीर की, सत्य से मन की, विद्या एवं ज्ञान से बुद्धि की और तप से आत्मा की शुद्धि होती है । अतः प्रत्येक व्यक्ति को इन उपायों को अपनाकर स्वयं को शुद्ध रखना चाहिए ।

(2) मानसिक शुद्धि :—मन की शुद्धि बहुत बड़ी उपलब्धि है । राष्ट्रपति बनना, प्रधानमंत्री बनना, न्यायाधीश बनना, आई०ए० एस० बनना, बड़ी उपलब्धि नहीं है । सच्चे अर्थों में मानव बनकर मानवता की सेवा करना । यही वेद संदेश है ।

2. संतोष :— इसका अर्थ है जीवन निर्वाह के लिए अपेक्षित वस्तुओं के अतिरिक्त वस्तुओं की इच्छा न करना । संतोष आपको एक सम्पूर्ण व्यक्ति बना सकता है ।

3. तप :— इसका अर्थ है कि सुख-दुख, सर्दी-गर्मी, भूख-प्यास, मान-अपमान आदि अनुकूल व प्रतिकूल परिस्थितियों में विचलित न होकर शांत रहो । इससे जीवन सफल हो जाता है ।

4. स्वाध्याय :—इसका अर्थ है आत्मनिरीक्षण एवं सद्ग्रंथों का अनुशीलन, मनन एवं आत्मसात करना ।

5. ईश्वर प्रणिधान :— इसका अर्थ है अपने सारे कर्मों को प्रभु को समर्पण करके पूर्ण करना ।

अतः स्पष्ट है कि यमों का संबंध नैतिक आचरण से है और नियमों का संबंध शारीरिक साधना से ।

3. आसन :— बैठने के ढंग को आसन के नाम से पुकारा जाता है । ध्यान के लिये साधक को ऐसे आसनों की अत्यंत आवश्यकता है जिन से उसके मन को सुख, शान्ति और आनन्द मिले । इसमें केवल सुख आसन, पद्म आसन, वज्र आसन ही आते हैं । शेष सब व्यायाम होते हैं ।

4. प्राणायाम : — इसका शाब्दिक अर्थ है प्राणों को रोकना । श्वास और प्रश्वास की गति को रोकने का नाम प्राणायाम है । यह

मुख्यतः निम्न तीन प्रकार का होता है ।

(1) पूरक – धीरे-धीरे श्वास को अंदर ले जाना ।

(2) कुम्भक – श्वास को रोके रखना ।

(3) रेचक – श्वास को धीरे-धीरे बाहर निकालना ।

ये तीनों सहज रूप में किए जाने चाहिएं । श्वास रोकते समय जब घुटन अनुभव हो, तब इसे धीरे-धीरे बाहर निकाल देना चाहिए । अभ्यास और साधना से श्वास रोकने का समय बढ़ाया जा सकता है । कुम्भक का समय पूरक के समय से चार गुना होना चाहिए और रेचक का समय पूरक से दो गुना होना चाहिए । इसके अभ्यास से मन में एकाग्रता आती है ।

5. प्रत्याहार :– मन का इंद्रियों के अनुकूल होना ही प्रत्याहार है । जब इंद्रियां बाह्य विषयों से हटकर मन के सामने रोक ली जाती हैं तब वह प्रत्याहार के नाम से पुकारा जाता है । इन्द्रियों को विषयों से हटाना ही प्रत्याहार है ।

प्राण निम्नलिखित पाँच प्रकार के होते हैं–

(1) प्राण (Respiration system) :– शरीर में कण्ठ से हृदय तक जो वायु कार्य करती है उसे प्राण कहते हैं । यह शरीर में मुँह, आँखों और कानों में रहता है ।

(2) अपान (Excretory system) :– नाभि से नीचे मूलाधार तक रहने वाली वायु को अपान वायु कहते हैं । इसकी सहायता से आंतें व गुर्दे मलमूत्र को बाहर निकालते हैं ।

(3) उदान :–कण्ठ से सिर तक जो वायु होती है उसे उदान कहते हैं ।

(4) समान (Digestive system) :–हृदय के नीचे नाभि तक वायु को समान कहा जाता है । इसका कार्य अन्न को पचाना है ।

(5) व्यान (Circulation system) :–यह सारे शरीर मे व्याप्त रहती है । यह रक्त संचार को नियंत्रित करती है ।

अतः जीवन ही प्राण है । यहाँ तक कि अथर्ववेद में एक पूरा प्राण-सूक्त है । (11.4.1-26) इसमें 26 मंत्र हैं । इस सूक्त का प्रथम मंत्र देखिए–

प्राणाय नमो यस्य सर्वमिदं वशे ।

यो भूतः सर्वस्येश्वरो यस्मिन्तसर्वं प्रतिष्ठितम् ।। 11.4.1

जिसके अधीन सब जगत् है, उस प्राण के लिए मेरा नमस्कार है । जो प्राण सबका ईश्वर है और जिससे सब कुछ हो रहा है ।

6. धारणा :–मन को टिकाना ही धारणा है । प्राणायाम से वायु और प्रत्याहार से इंद्रियों को रोक लेने पर मन को एकाग्र करना सरल हो जाता है ।

7. ध्यान :– परमात्मा को अनुभव करने के लिए उसके गुण, कर्म, स्वभाव का निरन्तर चिन्तन करना किन्तु बीच में किसी अन्य वस्तु या विषय का स्मरण न करना ध्यान कहलाता है । धारणा का परिपक्व होना ही ध्यान है । ध्यान करने वाला जब उस ध्येय वस्तु से अपने मन को सर्वथा भिन्न अनुभव करने लगता है । ध्यान करते समय व्यक्ति अपनी जीभ को मत हिलावे । जब तक जीभ नहीं हिलेगी ध्यान लगा रहेगा । ध्यान तीन प्रकार का होता है–(1) स्थूल ध्यान, (2) ज्योति ध्यान (3) सूक्ष्म ध्यान । ध्यान के दो मुख्य कार्य हैं– आत्मशुद्धि और आत्म समर्पण ।

8. समाधि :– शब्द एवं अनुमान प्रमाण के माध्यम से परमेश्वर के गुण, कर्म और स्वभाव का निरन्तर चिन्तन करते रहने पर जब परमेश्वर का प्रत्यक्ष होता है अर्थात् उसके आनंद में साधक निमग्न हो जाता है, तब उस अवस्था को समाधि कहते हैं । जब एकाग्रता में निरन्तरता आ जाती है, तब समाधि लग जाती है । समाधि में मानव के आध्यात्मिक जीवन की पूर्णता प्राप्त होती है । इसी का नाम योग है ।

ध्यान एवं समाधि में भेद यह है कि ध्यान में परमात्मा की खोज चलती रहती है और समाधि में उस की खोज समाप्त हो जाती है। विक्षेपों से हटाकर मन को निरुद्ध करना समाधि कहलाता है। समाधि में बुद्धि सम होती है और कोई विचार नही रहता। समाधि केवल शुद्ध मन से होती है। इसके मुख्य चार भेद हैं – (1) ध्यान योग समाधि, (2) नाद समाधि, (3) रसानंद योग समाधि और (4) लयसिद्धि समाधि।

अतः व्यक्ति योग के द्वारा ही समाधि में जा सकता है न कि भोग के द्वारा। ओशो ने अपनी पुस्तक ''संभोग से समाधि की ओर'' में लिखा है कि भोग के द्वारा ही व्यक्ति समाधि में जा सकता है जोकि सत्य नहीं है। ओशो के इस सिद्धान्त को चेतावनी देने के लिए आचार्य नरेश जी ने ''रजनीश का शून्यवाद'' नामक पुस्तक भी लिखी थी। परन्तु वे इसका उत्तर नहीं दे सके।

वस्तुतः योग संतों के लिये है और साधारण व्यक्ति के लिये क्रिया योग ही उपयुक्त है। क्रिया योग में केवल तप, स्वाध्याय और ईश्वरप्रणिधान ही आते हैं। यदि कोई व्यक्ति इन्हें ठीक ठाक कर लेता है तो उसकी यह उल्लेखनीय उपलब्धि है।

मोक्ष – हम देखते हैं कि अन्य दर्शनों की भाँति इस दर्शन का लक्ष्य मोक्ष है। लेखक ने इस योग अभ्यास के साथ मोक्ष के लिये प्रभुभक्ति को भी आवश्यक माना है। योग के अनुसार मुक्त पुरुष करुणा का सागर बन जाता हैं वह समूची मानवता को अपने ही समान देखता है। सारे संसार के भोग्य पदार्थों से उसे वैराग्य हो जाता है और फलस्वरूप साधक को जगत् में पुनः आना नहीं पड़ता। गुणों में गुणों के बंधनों से छूट जाता है। इस वैराग्य के उत्पन्न होने पर असम्प्रज्ञात समाधि का जन्म होता है। उस समय उसे सिद्धियाँ भी आकृष्ट करती हैं। परन्तु वैराग्य उनकी ओर जाने से साधक के मन को रोकता है। बस, जब साधक सिद्धियों को पार कर जाता है, तब वह मुक्त हो जाता है।

योगी– योगी भी चार प्रकार के होते हैं–

(1) किल्पक योगी :–वह होता है जो व्यक्ति योग के आठ अंगों से युक्त होकर योग मार्ग में प्रवेश ही करता है ।

(2) मधु भूमिक योगी :–इस प्रकार के योगी का मन अत्यधिक शुद्ध होता है । यहाँ तक कि देवता, अप्सरा आदि उसे प्रलोभन में डालने की चेष्टा करते हैं । परन्तु उस समय उसे अहंकार को सर्वथा त्याग देना चाहिये ।

(3) प्रज्ञा ज्योति योगी : ऐसा योगी भूत विजयी एवं इन्द्रिय विजयी हो जाता हैं भूतों पर विजय पा लेने पर योगी सब सिद्धियाँ प्राप्त कर लेता है ।

(4) अतिक्रांत योगी :–ऐसा योगी परम वैराग्य के साथ तीनों गुणों को जीतकर और चिन्तन करने के लायक सब पदार्थों की सीमा पर परमपद में स्थित हो जाता है । योगी की इस अवस्था को अंतिम अवस्था के नाम से पुकारा जाता है ।

वस्तुतः दर्शन प्रभु अस्तित्व को स्वीकार करता हैं क्लेश कर्मफल और संस्कारों से मुक्त पुरुष विशेष को परमात्मा नाम से पुकारा जाता है । इसमें प्रभु अति उपयोगी सिद्ध होता है । यह अध्यात्म का सार है जिसका भाव स्वयं को जानना । जैसे सेवक जगवानी जी ने लिखा है–

कर्म हम धर्म के करते नहीं, इसलिए मर्म आते हैं ।
योग में न रहकर भोग में रहते हैं, इसलिए रोग आते हैं ।।

आजीवन निरोग रहने की कला पृ० 46

इसी प्रकार स्वामी रामदेव जी भी योग की महत्ता पर प्रकाश डालते हुए लिखते हैं–

यदि संसार के लोग वास्तव में इस बात को लेकर गंभीर हैं कि शांति स्थापित होनी चाहिए तो इसका एक मात्र समाधान है –अष्टांग योग का पालन । अष्टांग योग के द्वारा ही वैयक्तिक व सामाजिक समरसता शारीरिक शांति एवं आत्मिक आनंद की अनुभूति हो सकती है ।

–जीवन दर्शन पृ० 95

2. वैशेषिक दर्शन (पदार्थ शास्त्र)

इस दर्शन के प्रवर्तक महर्षि कणाद मुनि हैं। इसमें 369 सूत्र और 10 अध्याय हैं। प्रत्येक अध्याय में दो-दो आह्निक है। इसका मूल ग्रंथ वैशेषिक सूत्र है। इसका विषय भी प्रायः न्यायदर्शन के समान है। इसका मुख्य विषय 7 पदार्थों का निरूपण है। इन 7 पदार्थों के ज्ञान के द्वारा धर्म सेवन की ओर प्रवृत्ति ही सुख का साधन बतलाया गया है। महर्षि कणाद ने बड़ी भारी तपस्या करने पर इस दर्शन का साक्षात्कार किया था। वे अन्न के कण-कण बीन कर अपना जीवन यापन करते हुए इस विधा के चिन्तन में लगे रहते थे। इसके लेखक परमात्मा, आत्मा और प्रकृति तीनों की स्वतंत्र सत्ता स्वीकार करते हुए अपने दर्शन में उन विधियों को बतलाते हैं जिनसे तत्व ज्ञान प्राप्त करके व्यक्ति लोकोन्नति एवं मोक्ष प्राप्त करता है। यह पदार्थों का विवेचन करता हैं पदार्थ का अर्थ है कोई नाम धारण करने वाली चीज। सारे संसार के नामधारी पदार्थ निम्नलिखित 7 के अन्तर्गत आ जाते हैं–

1. द्रव्य :–

द्रव्य उस वस्तु को कहते हैं जो गुण एवं कर्म का आश्रय हो। ये 9 हैं–पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, काल, दिक्, आत्मा एवं मन। इन में प्रथम 5 को महाभूत के नाम से पुकारा जाता है। यह दर्शन प्रत्येक महाभूत के दो रूप – नित्य और अनित्य मानता है। गंध जिसका धर्म है उसे पृथ्वी कहा जाता है। रूप रहित परंतु स्पर्शवाली चीज को वायु के नाम से पुकारा जाता है। रूपवान होते हुए जो स्पर्श भी किया जा सके उसे तेज कहते हैं। शीतल स्पर्श वाली वस्तु को जल कहते हैं। जिसका शब्द गुण हो उसे आकाश के नाम से पुकारा जाता है। दिक्, काल, आत्मा, एवं मन ये 4 नित्य द्रव्य हैं।

आत्मा :– यह एक नित्य वस्तु है जिसमें सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, धर्म, अधर्म आदि रहते हैं। यह व्यापक है और प्रत्येक शरीर में भिन्न है।

मन :– सुख आदि के अनुभव के लिए आत्मा को जिसकी सहायता लेनी पड़ती है वह है मन। मन भी प्रत्येक शरीर में अलग-अलग है इसलिये मन भी अनेक हैं। यह भी आत्मा के समान नित्य है। यह दर्शन दिक्, काल और मन को भी नित्य मानता है, अन्य दर्शन नहीं।

2. गुण :–गुण द्रव्य में निवास करते हैं। गुण का सीधा अर्थ है वस्तु में रहने वाला धर्म। ये गुण संख्या में 24 माने जाते हैं।

3. कर्म :–कर्म का सीधा अर्थ है क्रिया। आँखों के द्वारा देखे जाने वाले द्रव्य में क्रिया अवश्य रहती है। ये कर्म भी 5 प्रकार के होते हैं। जैसे– ऊपर उछालना, नीचे फेंकना, सिकुड़ना, फैलना और चलना।

कर्म में चेतना और प्रयत्न की आवश्यकता होती है। यों तो सोते समय ही हमारा हृदय, फेफड़ा, आमाश्य काम करते रहते हैं। प्राण भी सारे शरीर में चलता रहता है। परन्तु उसका नाम कर्म नहीं है। यह एक घटना है। कर्म, आत्मा और मन की प्रेरणा से होता है और उसमें ज्ञान एवं संकल्प भी दिखाई पड़ते हैं।

4. सामान्य : –इसका अर्थ है एक प्रकार की सब वस्तुओं में रहने वाला धर्म। इसको जाति के नाम से भी पुकारा जाता है। जैसे मनुष्यों में मनुष्यत्व, पशुओं में पशुत्व और गायों में गोत्व धर्म रहता है यह नित्य माना गया है। यह अनेकों में रहते हुये भी एक है।

5. विशेष : –एक द्रव्य को दूसरे द्रव्य से भिन्न करने वाला धर्म विशेष कहलाता है। यह सामान्य का विपरीत है। सामान्य एक प्रकार की विभिन्न वस्तुओं में एकता बतलाता है। परन्तु विशेष एक प्रकार की वस्तुओं में भेद भी करता है। जैसे काली गाय, पीली गाय, नीली गाय व सफेद गाय। यद्यपि गाय सब एक हैं परन्तु नीले, पीले, काले आदि रंगों ने उनमें भेद कर दिया।

7. समवाय : – प्रत्येक वस्तु का एक दूसरी वस्तु से संबंध होता है। यह संबंध दो प्रकार का होता है– संयोग और समवाय। संयोग संबंध उन वस्तुओं का होता है जो बिना संयोग के भी रह सकती हो। यह संबंध सदा नहीं रहता है। संयोग संबंध है क्योंकि कपड़ा हटा लेने पर भी व्यक्ति का अस्तित्व वैसे ही बना रहता है। इसके विपरीत समवाय संबंध उन दो वस्तुओं में होता है जिनका अस्तित्व वस्तु के न रहने पर भी रहे। जैसे मिट्टी व घड़े का संबंध, वस्त्र और धागे का संबंध। मिट्टी के नष्ट होते ही घड़ा नष्ट और धागे के नष्ट होते ही वस्त्र नष्ट। यह संबंध नित्य है।

अभाव :– अभाव को पदार्थ मानना इस दर्शन की एक विशेष बात है इसकी कल्पना वैशेषिक को इसलिये करनी पड़ी कि वह दुःखों के अत्यंत अभाव को मुक्ति मानता है। जब तक वह अभाव को पदार्थों में स्वीकार करेगा तब तक वह मुक्ति की सिद्धि नहीं कर सकता। मुक्ति भी तो अभाव ही है।

परमाणुवाद :– इसके अतिरिक्त वैशेषिक भी न्याय की भाँति परमाणु से ही सृष्टि की उत्पत्ति मानता है। दो परमाणुओं के संयोग से द्वयणुक और दो द्वयगुणों को तोलने से त्रसरेणु उत्पन्न होता है। वही त्रसरेणु स्थूल महाभूतों की उत्पत्ति का कारण है। प्रत्येक परमाणु शांत एवं निश्चल पड़ा रहता है। परन्तु प्राणियों के पुण्य और पाप के फलस्वरूप उन परमाणुओं में हलचल उत्पन्न हो जाती है व वे सृष्टि का सृजन करते हैं।

दान – दान तो अवश्य दिया जाये, क्योंकि जो कुछ प्राप्त हो जाये उसे ताले में बंद करके अकेले ही उपयोग लाने से व्यक्ति में हीन कोटि की स्वार्थ बुद्धि का प्रादुर्भाव होता है। दान सदा उचित पात्र को देखकर श्रद्धापूर्वक निःस्वार्थ भाव से करना चाहिये। ऐसे दान की एक विशेषता यह भी है कि उसे जहाँ तक हो चुपचाप बिना कुछ अहसान

जताये देना चाहिये । आजकल की भाँति अपने नाम का डंका पीटकर दान देना और जितना दिया है उससे कहीं अधिक प्रशंसा की इच्छा रखना दान महत्व को नष्ट करता है ।

प्रस्तुत रचना का सर्वप्रथम सूत्र है–

अथातो धर्म व्याख्यास्यामः

अर्थात् अब हम धर्म की व्याख्या करते हैं ।

1. सामान्य धर्म – अहिंसा, चोरी न करना, सत्य, श्रद्धा, ब्रह्मचर्य, विचार शुद्धि, मानवता का कल्याण करना, क्रोध न करना आदि ।

2. विशेष धर्म – धर्म ग्रंथों में प्रत्येक वर्ण और प्रत्येक आश्रम विस्तार से वर्णित है । उनको वहाँ से देखना चाहिये । इन कर्मों का आचारण किसी इच्छा से करने पर तो वांछित फल मिलता है और निष्कामभाव से करने पर ये ही कर्म मुक्ति प्रदान करने वाले बन जाते हैं ।

3. ईश्वर – इस दर्शन ने प्रभु सत्ता को स्वीकार किया है और उसे सृष्टि का निमित्त कारण माना है ।

3. सांख्य दर्शन

सम्यक् विचार ही सांख्य है। जिसमें पदार्थों का यथार्थ ज्ञान होता है उसे सांख्य कहते हैं। इसके रचियता महर्षि कपिल हैं। इसमें 525 सूत्र हैं। महाभारत में भी इसका विशेष विवेचन किया गया है। श्रीकृष्ण ने कपिल मुनि को सब से बड़ा सिद्ध स्वीकार किया है और उनको अपनी ही विभूति माना हैं लेखक ने इसमें आत्मा की स्वतंत्र सत्ता स्वीकार करते हुए उसका परमकर्त्तव्य आधिभौतिक, आधिदैविक एवं आध्यात्मिक तीनों प्रकार के दुःखों की निवृत्ति बतलाया है। इसके अनुसार 25 तत्व माने जाते हैं। जिनके ज्ञान से मानव मात्र सब प्रकार के दुःखों से छुटकारा प्राप्त कर सकता है। इन 25 तत्व के नाम निम्नलिखित हैं–

(1) पुरुष (आत्मा) :– जब तक व्यक्ति को आत्मज्ञान नहीं होता तब तक वह सांसारिक सुख, सम्प्रदायों और व्यक्ति को ही जीवन का सार समझकर उनमें लिप्त रहता है और व्यक्ति जन्म के सर्वोच्च ध्येय मोक्ष की ओर से उदासीन रहता है। इसमें 14 प्रकार की सृष्टि मानी गई है जिनमें से 8 मानव जीवन से उत्तम देव की श्रेणी में हैं और 5 पशु, पक्षी, सरीसृप, कीट आदि नीची श्रेणी के हैं। इनमें आत्मा को पुरुष नाम से पुकारा जाता है। पुरुष चेतन और अनेक हैं। प्रकृति के समान पुरुष भी अनुमान से सिद्ध किया जाता है। इसके 5 कारण हैं–

प्रथम कारण – महत्तत्व, अहंकार आदि पदार्थों को देखकर हम यह अनुमान कर लेते हैं कि ये पदार्थ अवश्य किसी न किसी के लिये होंगे। ये जिसके लिये होंगे वही पुरुष है।

दूसरा कारण – जिस प्रकार ब्राह्मण नाम तभी सार्थक है जब उससे भिन्न लोग भी हो उसी प्रकार संसार के पदार्थों का त्रिगुणमय होना गुणहीन पुरुष का होना सिद्ध करता है।

तीसरा कारण – सुख-दुःख आदि धर्मों का स्थान कोई अवश्य होगा जिसमें ये रहते होंगे। बस, वही पुरुष के नाम से पुकारा जाता है।

चौथा कारण – बुद्धि आदि सारे पदार्थ दृश्य हैं। उनका देखने

वाला कोई न कोई अवश्य होगा वही पुरुष है ।

पाँचवा कारण – मुक्ति के लिये लोगों में प्रवृत्ति देखी जाती है । वह मन, बुद्धि आदि जड़ पदार्थों की हो नहीं सकती । अतः चेतन पुरुष को मानना ही पड़ेगा ।

इसमें पुरुष एक नहीं माना गया है । इसका उसने लोक का प्रत्यक्ष प्रमाण दिया है । यदि पुरुष एक ही होता तो एक व्यक्ति के मरने पर सभी व्यक्तियों की मृत्यु हो जानी चाहिये और एक के जन्म लेते ही सब का जन्म हो जाना चाहिये परन्तु ऐसा नहीं होता है । अतः यह सिद्ध होता है कि पुरुष एक नहीं है परन्तु अनेक हैं । क्योंकि संसार में सब व्यक्तियों का स्वभाव एक नहीं है ।

(2) प्रकृति – इसमें संसार के सारे पदार्थों का कारण प्रकृति को माना गया है । पैदा होने से पूर्व ही कार्य कारण में अव्यक्त रूप में रहता है । जैसे बीज से वृक्ष पैदा होता है । वृक्ष है कार्य और बीज है उसका कारण । यदि बीज में अव्यक्त रूप से वृक्ष न होता तो बीज से कभी भी वृक्ष पैदा नहीं होता । इस प्रकार कारण एवं कार्य में कोई भेद नहीं होता । कार्य की अव्यक्त अवस्था का ही नाम कारण है । कारण ही जब प्रत्यक्ष दिखलायी पड़ने लगता है तब उसे कार्य कहना आरम्भ कर देते हैं । व्यवहार में चाहे कार्य एवं कारण विभिन्न दिखाई पड़े । परन्तु उनमें वास्तव में भेद नहीं होता । इसको सत्कार्यवाद के नाम से पुकारा जाता है ।

प्रकृति को समझने के लिए हमको संसार के पदार्थों का निरीक्षण करना चाहिये । इस संसार के सारे पदार्थों में सत्व, रज और तम गुण हैं । इन गुणों के बिना दुनियाँ की कोई चीज नहीं । उनमें यह समानता पायी जाती है । अतः इन सब का मूल कारण कोई एक ही तत्व है । जिसे प्रधान अव्यक्त या प्रकृति के नाम से पुकारा जाता है । इस प्रकृति से ही महतत्व (बुद्धि) उत्पन्न होती है ।

प्रकृति एवं पुरुष के संयोग से ही सृष्टि सृजन होता है न केवल प्रकृति अकेली ही सृष्टिसृजन करने में समर्थ है, क्योंकि वह जड़ है। न अकेला पुरुष ही सृष्टि सृजन कर सकता है क्योंकि वह निष्क्रिय है। अतः इसके लिये दोनों का संयोग परमावश्यक है। जैसे अंधा और लंगड़ा। दोनों मिलकर परस्पर सहयोग से मार्ग पार कर सकते हैं। अंधे को दीखता नहीं है और लंगड़ा चल नहीं सकता है। अतः अंधा लंगड़े को कंधे पर बैठा लेता है तो दोनों का काम बन जाता हैं लंगड़ा मार्ग दिखा देता है और अंधा उसे ले जाता है। इसी प्रकार प्रकृति एवं पुरुष दोनों मिलकर सृष्टिसृजन करते हैं।

प्रकृति उस नाचने वाली स्त्री के समान है जो अपना नाच दर्शकों को दिखलाकर स्वयं नाचने से हट जाती है। प्रकृति बड़ी लजीली है। वह पुरुष के द्वारा अनुभूत होने पर फिर उसके सामने नहीं आती। इस प्रकार विवेक होने पर पुरुष के लिये प्रकृति का कोई काम ही नहीं रहता। उस हालत में उसे यह ज्ञान हो जाता है कि मैं स्वभाव से ही निष्क्रिय हूँ। मुझमें कर्त्तापन नहीं है और न किसी के साथ मेरा संबंध ही है। इस मुक्तावस्था की प्राप्ति प्रत्येक व्यक्ति इसी जीवन में पा सकता है।

(3) महतत्व (बुद्धि) – प्रकृति का पहला विकार महतत्व है। इसी को बुद्धि नाम से भी पुकारा जाता हैं इसी बुद्धि में मानव की सारी स्मरण शक्ति एवं संस्कार रहते हैं। बुद्धि के द्वारा ही व्यक्ति किसी निश्चय तक पहुँच सकता है। अतः निश्चय करना बुद्धि का काम है।

(4) अहंकार – बुद्धि से अहंकार उत्पन्न होता है। यह तीसरा तत्व है। कुछ व्यक्तियों का विचार है कि तत्वों की गणना करने के कारण ही इसको सांख्य के नाम से पुकारा जाता हैं अहंकार के कारण व्यक्ति-व्यक्ति में भेद किया जाता है।

(5) मन –अहंकार से ही मन पांच कर्मेन्द्रियां, पांच ज्ञानेन्द्रियां और पांच तन्मात्राओं की व्युत्पत्ति होती है। अहंकार भी दो प्रकार का होता है–

(क) सात्विक अहंकार – इससे इन्द्रियां और मन उत्पन्न होते हैं ।

(ख) तामसिक अहंकार –इससे तंन्मात्राएं उत्पन्न होती हैं जैसे कि महर्षि कपिल आलोच्य कृति में लिखते हैं ।

उभयात्मक मन – मन उभयात्मक इन्द्रिय है क्योंकि मन के सहयोग के बिना कोई भी इन्द्रिय काम नहीं कर सकती ।

दस इन्द्रियाँ – हमारी इन्द्रियाँ दो प्रकार की होती हैं ।

(1) कर्मेन्द्रियां – ये 5 हैं – वाणी, पाणि (हाथ), पांव, मलद्वार और मूत्रद्वार ।

(2) ज्ञानेन्द्रियाँ – ये भी 5 हैं– आँख, कान, नाक, जीभ, त्वचा ।

(3) तन्मात्राएं – ये भी 5 हैं – शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध ।

5 महाभूत – आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी ।

5 तन्मात्राओं से 5 महाभूतों की उत्पत्ति होती है । शब्द से आकाश स्पर्श एवं शब्द से वायु तीन इन दोनों और रूप से अग्नि, इन तीनों और रस से जल और इन 5 तन्मात्राओं से पृथ्वी की उत्पत्ति होती है । वस्तुतः तन्मात्राएँ महाभूतों के सूक्ष्मतम रूप ही हैं । इनके अलग-अलग गुण हैं । वायु में शब्द व स्पर्श दो गुण हैं । अग्नि में शब्द स्पर्श और रूप तीन गुण हैं । जल में शब्द, स्पर्श, रूप, रस, चार गुण हैं और पृथ्वी में चारों गुणों के साथ पाँचवां गंध भी रहता है । इस प्रकार इन महाभूतों के सहयोग से सारी पृथ्वी बनती है ।

(9) मोक्ष – इसके अनुसार मोक्ष दो प्रकार का होता है । (1) जीवमुक्ति, (2) विदेहमुक्ति ।

विवेक हो जाने पर व्यक्ति इसी जन्म में जिस मुक्ति का अनुभव करता है उसे जीव मुक्ति के नाम से पुकारा जाता है । जीव मुक्त कार्य करने से विरत नहीं होता, वह अनासक्त रूप में कर्मों को करता रहता है ? अब वे कर्म बंधन उत्पन्न नहीं करते हैं । जैसे डंडे के द्वारा घुमाया हुआ कुम्हार का चक्र डंडे का व्यापार समाप्त होने पर भी कुछ समय के

लिये घूमता रहता है । उसी प्रकार जीवमुक्ति हो जाने पर भी अभ्यास वश प्रारब्ध कर्म चलते ही रहते हैं । शरीर नाश होने पर जब व्यक्ति तीनों प्रकार के दुःखों से रहित हो जाता है, तब उसे विदेह मुक्त नाम से पुकारा जाता है । तीनों प्रकार के दुःखों से छूट जाना ही इस के मत में मुक्ति है । ये आनंद प्राप्ति को मुक्ति नहीं मानते हैं ।

(10) ईश्वर :– स हि सर्ववित् सर्वकर्ता ।

वह ईश्वर सर्वान्तर्यामी है और सब का कर्त्ता है । संसार में ऐसा कोई भी पदार्थ नहीं हो सकता जो ईश्वरीय सत्ता से शून्य हो । ईश्वर छोटे-छोटे अणु से लेकर बड़े से बड़े ग्रह व नक्षत्रों में भी व्याप्त है । इस दृष्टि से ईश्वर को जगत् का रचयिता अथवा नियंत्रण करने वाला स्वीकार किया गया है । इस प्रकार ईश्वर की सिद्धि इस में दृढ़ता से की गई है । इसमें ईश्वर को संसार का नियंता एवं अधिष्ठाता स्वीकार किया गया है । अतः यह अति प्राचीन काल से भारतीय समाज में ज्ञाननिष्ठा का प्रचार-प्रसार करता आया है । यही कारण है कि गीता में भी सांख्य योग का विवेचन किया गया है ।

4. न्याय दर्शन

इसके रचयिता महर्षि गौतम है। गौतम का न्यायसूत्र इसका मूल ग्रंथ है। इसमें 5 अध्याय और प्रत्येक अध्याय में दो-दो आह्निक और 544 सूत्र है। इस प्रकार यह ग्रंथ दिखने में बहुत छोटा सा है परन्तु विषय की दृष्टि से इसका बड़ा महत्व है। इसको बड़े सम्मान से देखा जाता है क्योंकि यह दर्शन सभी बातों को तर्क की कसौटी पर कसकर उन्हें स्वीकार करता है। वैदिक धर्म का सत्य रूप जानने के लिये इसका अध्ययन परमावश्यक है। वस्तुतः यह एक प्रकार से उस दीपक के समान है जो सारी वस्तुओं को प्रकाशित कर देता है। इसका मुख्योद्देश्य तर्क के सहारे धर्म को स्थापित करना है। इसके अनुयायी विद्वानों ने ही विरोधियों की बातों का उत्तर देकर वैदिक सिद्धांत की रक्षा की। अतः इसकी उपादेयता सभी को माननी पड़ती है।

न्याय का अर्थ है अनेक प्रमाण देकर किसी वस्तु की वास्तविक तत्व की परीक्षा करना और यही इसका मुख्योद्देश्य है। जितना विस्तार से विवेचन इसका हुआ है उतना अन्य दर्शनों में नहीं। इसके रचियता आत्मा, परमात्मा और प्रकृति की नित्य सत्ता स्वीकार करते हैं। इसका सार है कि आत्मा को दुःख, मिथ्या ज्ञान से होता है और मिथ्याज्ञान का नाश सत्य ज्ञान से होता है। उन प्रमाणों में भी अनुमान प्रमाण पर इस दर्शन में बड़ा विवेचन हुआ है।

1. न्याय दर्शन का विषय –

अन्य दर्शनों की भाँति न्याय दर्शन का भी अंतिम लक्ष्य मुक्ति है। वह मुक्ति प्राप्त होती है 16 पदार्थों के तत्व को जान लेने से। उन 16 पदार्थों के नाम निम्नलिखित हैं–

(1) प्रमाण, (2) प्रमेय, (3) संशय, (4) प्रयोजन, (5) दृष्टांत, (6) सिद्धान्त, (7) अवयव, (8) तर्क, (9) निर्णय, (10) वाद, (11) जल्प, (12) वितण्डा, (13) हेत्वाभास, (14) छल, (15)

जाति, (16) निग्रहस्थान ।

1. प्रमाण :–वस्तुतः जिस प्रकार दीपक सब वस्तुओं को प्रकाशित करता है उसी प्रकार बुद्धि सब पदार्थों को प्रकाशित करती है । वह ज्ञान आत्मा में रहता है । ज्ञान दो प्रकार का होता है –(1) स्मृति, (2) अनुभव । संस्कार के कारण कभी-कभी पहले अनुभव किये हुये पदार्थों का किसी समान पदार्थ के देखने पर ज्ञान हो जाता है । उसको ही स्मृति के नाम से पुकारा जाता है । स्मृति से भिन्न जो ज्ञान होता है । उसे अनुभव कहते हैं । यह अनुभव भी दो प्रकार का होता है–(1) यथार्थ ज्ञान –इसको प्रभा नाम से भी पुकारा जाता है । (2) अयथार्थ ज्ञान –इसको अप्रभा नाम से पुकारा जाता है । परन्तु जिसके द्वारा ज्ञान की यथार्थता का निर्णय हो सके उसे ही प्रमाण नाम से पुकारा जाता है ।

प्रमाण के भेद – प्रमाण 4 प्रकार का होता है ।

प्रत्यक्ष : इंद्रियों का अपने-अपने विषयों के साथ संयोग होने पर जो ज्ञान पैदा होता है उसे प्रत्यक्ष कहते हैं । आत्मा के अंदर प्रत्यक्ष ज्ञान पैदा होने के लिये तीन प्रकार का संयोग आवश्यक है । सब से पहले आत्मा का मन के साथ संबंध होता है । तब मन जाकर इंद्रियों से अपना संबंध स्थापित करता है और इंद्रियों का विषय के साथ संबंध होता है । इस प्रकार आत्मा को किसी भी विषय का प्रत्यक्ष ज्ञान मन और इंद्रियों की सहायता से होता है । प्रत्यक्ष ज्ञान भी दो प्रकार का होता है – (1) निर्विकल्पक (2) सविकल्पक ।

सब से पहले जब इंद्रियों के साथ किसी वस्तु का संयोग होता है, तब केवल कोई चीज है यही ज्ञान होता है ।

उसे निर्विकल्प प्रत्यक्ष कहा जाता है । कुछ समय बाद जब उस वस्तु का सारा विवरण प्रस्तुत हो जाता है । तब उसे सविकल्पक प्रत्यक्ष कहते हैं । प्रत्यक्ष ज्ञान की साधन पाँच इंद्रियां हैं । अतः नेत्र से होने वाले प्रत्यक्ष को चाक्षुष, कानों से होने वाले प्रत्यक्ष को श्रावण, त्वचा से

होने वाले प्रत्यक्ष को स्पर्शन, जीभ से होने वाले को रासन और नासिका से होने वाले को घ्राणज कहते हैं । इंद्रियों के साथ विषय का जो संयोग होता है वह भी 6 प्रकार का है– (1) संयोग, (2) संयुक्त समवाय, (3) संयुक्त समवेत समवाय, (4) समवाय, (5) समवेत समवाय, (6) विशेषण-विशेष्य भाव ।

2. अनुमान :– किसी हेतु के ज्ञान से इच्छा हेतु को धारण करने वाली वस्तु के ज्ञान को अनुमान कहा जाता है । जैसे–यह पर्वत धुँआं वाला होने के कारण आग वाला है । जहाँ धुआं होता है, वहाँ पर आग का होना आवश्यक है । जैसे रसोई घर । उसको इस प्रकार समझना चाहिये कि कोई व्यक्ति प्रतिदिन रसोई घर में अग्नि जलाता है और इसके साथ धुआं भी प्रतिदिन देखता है । उसकी प्रतिदिन धुआं के साथ आग देखने से पक्का निश्चय हो गया हैं कि जहाँ धुआं होता है वहाँ आग अवश्य होगी । वही व्यक्ति एक दिन किसी पहाड़ पर चला जाता हैं वहाँ उसे धूम्रपान करने के लिये या भोजन पकाने के लिये या अन्य किसी काम के लिये आग की आवश्यकता पड़ती है । उसी समय आग की खोज करते हुए उसके दूर से धुआं दिखाई देता है । इस प्रकार वह धुआं देखकर अनुमान कर लेता हैं कि इस पर्वत पर आग होगी । क्योंकि जहाँ-जहाँ धुआं होता है वहाँ-वहाँ आग अवश्य होती है । अनुमान भी दो प्रकार का होता है–

(1) स्वार्थानुमान :–यह अपने लिये किया जाता है ।

(2) परार्थनुमान :–यह दूसरे व्यक्तियों के लिये किया जाता है । इसमें पाँच वाक्यों का प्रयोग किया जाता है । जैसे– (1) प्रतिज्ञा, (2) हेतु, (3) उदाहरण, (4) उपनेय, (5) निगमन । जैसे –

(1) वह मरने वाला है । (प्रतिज्ञा)

(2) क्योंकि वह व्यक्ति है । (हेतु)

(3) जितने भी व्यक्ति है वे सब मरणधर्मा है । जैसे हम, तुम,वे सब आदि (उदाहरण)

(4) वह भी एक ऐसा ही व्यक्ति है । (उपनय)

(5) अतः वह मरने वाला है । (निगमन)

हेत्वाभास :–अनुमान केवल हेतु (कारण) पर ही अवलम्बित है । अतः वह हेतु सच्चा होना चाहिये । जो हेतु सच्चा नहीं होता उसे हेत्वाभास कहते हैं । कभी-कभी वास्तव में जो सही कारण नहीं है वह भी कारण सा दिखाई पड़ता है । उससे अनुमान की सिद्धि नहीं हो सकती है ।

3. उपमान :– पहले देखी हुई किसी वस्तु के समान चीज को देखकर जहाँ किसी नई वस्तु का ज्ञान होता है । वहाँ पर उपमान प्रमाण होता है । जैसे कोई व्यक्ति गाय के समान गवय (पशु-विशेष) होता है । वह सुन लेता है । फिर वह किसी दिन जंगल में जाकर गाय के समान किसी पशु को देखता है । उस समय वह तुरंत जान लेता है कि यह गवय है । यही उपमान कहलाता है ।

4. शब्द : –इसमें शब्द को प्रमाण माना गया है । वस्तु के सच्चे अर्थों को जानने वाले व्यक्ति का वचन शब्द कहलाता है ।

5. प्रमेय : – इस दर्शन में 12 प्रमेय माने गये हैं । जैसे– आत्मा, मन, वचन, शरीर का व्यापार, दोष, पुनर्जन्म फल, दुःख, मोक्ष आदि ।

6. ईश्वर : – इसमें ईश्वर को संसार का निमित्त कारण समझा गया है । जिस प्रकार कुम्हार घड़े के बनाने में कारण है, वैसे ही इस संसार का निर्माता ईश्वर है । इसके अनुसार ईश्वर के अस्तित्व के विषय में सबसे बड़ी युक्ति यह है कि संसार भी घट पट आदि के समान कार्य है और कोई भी कार्य बिना किसी भी कर्ता के नहीं हो सकता । अतः ईश्वर के बिना सृष्टिसृजन कभी भी नहीं हो सकता । संसार को हम अपनी आँखों से देख रहे हैं । इसी प्रकार ईश्वरसिद्धि भी अनुमान से ही होती है ।

(7) परमाणुवाद :– इसमें सृष्टिसृजन की सिद्धि परमाणु से मानी गई है । जब प्रभु इच्छा होती है तब एक परमाणु दूसरे परमाणु से मिलकर द्वयणुक की उत्पत्ति कर देता है । और दो द्वयणुक मिलकर त्रसरेणु को उत्पन्न कर देते हैं । उनसे आकाश आदि पाँचों महाभूतों की उत्पत्ति होती है ।

(8) मुक्ति :– 16 पदार्थों के वास्तविक ज्ञान से मुक्ति मिलती है । मिथ्याज्ञान बंधन का कारण है और उसी में फंसा हुआ व्यक्ति दुःख आदि को भोगता रहता हैं इन पदार्थों के तत्वज्ञान से मिथ्या ज्ञान नष्ट हो जाता है । इस प्रकार ध्यान धारणादि से आत्मा का साक्षात्कार सुख दुःख आदि से रहित अवस्था प्राप्त करना मुक्ति नहीं है । यह दर्शन मुक्ति को आनंद नहीं मानता परन्तु इसके अनुसार मुक्ति से दुःख-निवृत्ति होती है । यह ईश्वर अस्तित्व को स्वीकार करता है ।

5. वेदांत दर्शन

इसके लेखक महर्षि वेदव्यास हैं। इसका मूल ग्रंथ बादरायण लिखित वेदांतसूत्र है जिसे ब्रह्मसूत्र, उत्तर मीमांसा एवं शारीरिक भाष्य भी कहा जाता है। इसमें 4 अध्याय, 16 पाद और 555 सूत्र हैं।

(1) अधिकारी :– इस ज्ञान का अधिकारी बनने के लिये व्यक्ति को कुछ गुणों की आवश्यकता पड़ती है। वे गुण निम्नलिखित हैं–मन की निर्मलता, मन और इंद्रियों पर नियंत्रण, सांसारिक भोग विलासों से वैराग्य, सुख व दुःख में भेद न समझना, गुरु के वचनों में श्रद्धा, मोक्ष की अभिलाषा और मन की एकाग्रता का अभ्यास। आजकल प्रायः लोग पर उपदेशार्थ वेदांत के सिद्धांतों का तोते की भाँति रटन लगाते देखे जाते हैं, परन्तु समय पड़ने पर स्वयं उन पर अमल नहीं कर सकते। वे इस ज्ञान के वास्तविक अधिकारी नहीं है। वेदांत का अधिकारी बनने के लिये मन पर नियंत्रण आवश्यक है जोकि बड़ी साधना के पश्चात् ही सम्भव हो सकता है। यह अधिकारी सांसारिक कष्टों से मुक्त होने की इच्छा है। यह अधिकारी सांसारिक कष्टों से मुक्त होने की इच्छा से गुरु की सेवा में जाता है। गुरु भी उसे उपदेश देता हुआ वास्तविक तत्व समझा देता है।

(2) माया :–जैसे रस्सी में सर्प का भ्रम हो जाता है वैसे ही सत्, चित् और आनंदस्वरूप ब्रह्म में जगत् आदि का भ्रम होता हैं यह न सत् पदार्थ है और न असत् पदार्थ है। वह त्रिगुणात्मिका है और एक और अनेक दोनों हैं। ब्रह्म की स्थिति ही हमारे अंदर एकता उत्पन्न करती है और माया भेद को पैदा करने वाली है। माया के कारण ही निर्गुण और अखंड ब्रह्म जगत् के रूप में दिखाई देता है। आवरण शक्ति से परिणित होते हुये भी अज्ञान देखने वाले की बुद्धि पर पर्दा डालकर अपरिमित और सुख-दुःख शून्य आत्मा को ढक देता है। जैसे मेघ होते हुये भी देखने वाले की आँखों के सामने आकर विशाल सूर्यमंडल को

ढक लेता है। वैसे ही माया ब्रह्म को ढक लेती है। विक्षेप शक्ति से माया में आकाश आदि प्रपंच को उत्पन्न कर देती है।

(3) जगत् :—आवरण और विक्षेप नामक शक्तियों से युक्त माया के द्वारा आच्छादित चैतन्यरूप प्रभु जगत् का निमित्त एवं उपादान कारण बन जाता है। तमोगुणप्रधान विक्षेप शक्तियुक्त माया से आच्छादित प्रभु से आकाश की तन्मात्रा पैदा होती है उससे वायु की तन्मात्रा, उससे अग्नि की तन्मात्रा, उससे जल की तन्मात्रा और उससे पृथ्वी की तन्मात्रा उत्पन्न होती है। 5 कर्मेन्द्रियाँ 5 ज्ञानेन्द्रियाँ, 5 प्राण, मन व बुद्धि ये 17 सूक्ष्म शरीर के अवयव हैं। इनमें से 5 कर्मेन्द्रियां 5 प्राण प्राणमय कोश हैं। ज्ञानेन्द्रियों सहित मन मनोमय कोश है। ज्ञानेन्द्रियां और बुद्धि विज्ञान कोष है।

(4) पंचीकरण :—इन 5 महाभूतों में प्रत्येक के दो-दो भाग किये जाते हैं। प्रत्येक का एक-एक भाग तो सुरक्षित रख लिया जाता है और दूसरे भाग के चार-चार टुकड़े कर लिये जाते हैं। उन 4 टुकड़ों में से एक-एक भाग प्रत्येक में मिला दिया जाता है। जैसे आकाश के प्रथम दो खंड किये। एक खंड रख लिया और दूसरे खंड के फिर चार टुकड़े किये। उन चारों टुकड़ों को क्रमशः वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी में मिला दिया। उसी प्रकार वायु के द्वितीय भाग के चार खण्डों को अपने सिवा आकाश आदि चारों में मिला दिया। इसी प्रकार प्रत्येक भूत के द्वितीय भाग के चार-चार खंड कर अन्य चारों भूतों में मिला दिये जाते हैं। उसी क्रिया को वेदांत में पंचीकरण के नाम से पुकारा जाता है। इसी क्रिया के द्वारा भूत सूक्ष्म से स्थूल बन जाते हैं। इन स्थूल भूतों से सारे स्थूल प्रपंच की उत्पत्ति होती है।

(5) मुक्ति :— जिस व्यक्ति ने आत्मा व ब्रह्म की एकता को अच्छी प्रकार समझ लिया है वह कभी भी कुकर्मों की ओर प्रवृत्त नहीं हो सकता। उसके सभी कर्म निष्काम भाव से ही होते हैं और अज्ञान

रहित हो जाने के कारण अज्ञान से होने वाले कर्म आदि का वह सर्वथा परित्याग कर देता है । यह न तो इस शरीर का कोई महत्व समझता है और न इस शरीर के लिये किये जाते वाले कर्मों को ही कोई महत्व देता है । इस प्रकार कर्मों में उसकी आसक्ति नहीं रह जाती । जैसे दर्शक इन्द्रजाल दिखाने वाले के द्वारा दिखाये जाने वाले तमाशों को देखता हुआ भी उनको मिथ्या समझता है उसी प्रकार ज्ञानी व्यक्ति इस जगत् को देखते हुए भी इसे मिथ्या समझता है और इसके व्यवहार को कोई महत्व नहीं देता । अपितु इससे उदासीन हो जाता है । उसका फल यह होता है कि वह देह का अभिमान बिल्कुल छोड़ देता है ।

देह का अभिमान परित्याग करने वाला व्यक्ति शुभाशुभ कर्मों की ओर आकृष्ट होता ही नहीं । यह कर्म इसलिये करता है कि उनके बिना उसकी जीवन लीला नहीं चलती है । उस समय केवल वे ही कर्म वह करता है जो जीवन यात्रा के लिए अनिवार्य है । परन्तु उनमें वह कर्त्तापन का अहंकार नहीं रखता । वह सारे पाप पुण्यों से मुक्त हो जाता है । क्योंकि अब वह कोई काम्य कर्म नहीं करता । इस प्रकार जब वह शरीर के अभिमान से सर्वथा मुक्त होकर सारी मानवता को अपने ही समान समझने लगता है, तब वह जीवन्मुक्त हो जाता हैं जब उसके कर्मफल पैदा करना बंद कर देते हैं और इस शरीर का अंत हो जाने पर उसकी आत्मा परब्रह्मलीन होकर आनन्दमय हो जाती है तब वह साक्षात् ब्रह्म ही बन जाता है । बस इसी आनन्दमय अवस्था की प्राप्ति का नाम है मुक्ति । मुक्त आत्मा सारे अज्ञान के कारण उत्पन्न होने वाले प्रपंच से रहित हो अखंड ब्रह्मस्वरूप ही हो जाता है ।

वेदांत-दर्शन को समझने के लिये उपनिषदों का ज्ञान आवश्यक है । वस्तुतः वेदांत एवं उपनिषद् एक दूसरे के पूरक हैं । केवल वेदांत दर्शन में आनंद प्राप्ति के साधन का प्रतिपादन है । अतः यह सर्वश्रेष्ठ दर्शन है ।

वेदान्त दर्शन के विषय में प्रस्तुत ज्ञान वस्तुतः अद्वैतवाद के मानने वाले नवीन वेदान्तियों का है। महर्षि व्यास कृत वेदान्त शास्त्र की जगह 'वेदान्त सार' नामक 'प्रकरण ग्रंथ' के काल्पनिक सिद्धान्त लिखे हैं। ब्रह्म, जीव, ईश्वर, माया आदि का काल्पनिक स्वरूप और परिभाषा भी इसी के अनुसार की है। अतः सत्य जानने के लिए व्यास कृत वेदान्त दर्शन पढ़ें।

6. मीमांसा दर्शन

इसके रचयिता महर्षि जैमिनी थे। इसमें 12 अध्याय 60 पाद और 2644 सूत्र हैं। जबकि अन्य पाँचों दर्शनों में 2188 सूत्र हैं। इस प्रकार यह सब से बड़ा दर्शन है। जैमिनि का मीमांसा सूत्र इस दर्शन का मूल ग्रंथ है। इसको पूर्व मीमांसा और उत्तर मीमांसा के नाम से भी पुकारा जाता है। कुमारिल, प्रभाकर आदि इसके मुख्य आचार्य हुये हैं।

इसमें 6 प्रमाणों का विवेचन किया गया है। वे हैं–प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, शब्द, अर्थापत्ति एवं अनुपलब्धि। इसमें से प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान शब्द पर न्याय दर्शन में विचार किया जा चुका है। अब अर्थापत्ति और अनुपलब्धि पर ही विचार किया जाता है।

(1) अर्थापत्ति :–जब कोई अर्थ दूसरे अर्थ के बिना उत्पन्न नहीं होता है, तब उस अर्थ की कल्पना कर ली जाती है। जैसे –एक व्यक्ति दिन में सदा भूखा रहता है फिर भी मोटा है। बिना भोजन के व्यक्ति मोटा रह नहीं सकता। इसलिये यहाँ पर रात को भोजन करता होगा। इस अर्थ की कल्पना कर ली जाती है। इसका नाम अर्थापत्ति है। मीमांसक इस प्रमाण पर बहुत जोर देते हैं।

(2) अनुपलब्धि :– इसका अर्थ है किसी वस्तु का अभाव। जो वस्तु है उसको इन्द्रियों से अनुभव किया जा सकता हैं परंतु जो नहीं है उसका अनुभव नहीं होता है, अतः अनुपलब्धि भी एक प्रमाण सिद्ध होता है।

इसका मुख्योद्दश्य है धर्म का विश्लेषण करना है। धर्म के विषय में प्रमाण है वेद। अतः इसने वेद के स्वरूप और प्रमाणिकता को दिखाने के लिए बहुत सी युक्तियाँ दी हैं।

मीमांसा तत्वज्ञान :– तत्वज्ञान की दृष्टि से मीमांसा इस सारे प्रपंच को नित्य मानता है। इसके अनुसार 8 पदार्थ माने गये हैं–द्रव्य,

गुण, कर्म, सामान्य, परतंत्रता, शक्ति, समानता व संख्या। इन में से पहले 4 का उल्लेख वैशेषिक दर्शन में किया जा चुका हैं वैशेषिक जिसे समवाय कहता है। मीमांसा उसे परतंत्रता के नाम से पुकारता है। मीमांसक इसे नित्य नहीं मानते हैं क्योंकि यह अनित्य पदार्थों में भी रहता है। शेष 3 के अर्थ स्पष्ट है। अतः उनका विवेचन आवश्यक नहीं है।

संसार :– इन्द्रियों के द्वारा बाहरी चीजों का अनुभव है। इनके द्वारा संसार को जिस रूप में देखा जाता है उस रूप में संसार नित्य है। इस संसार में तीन प्रकार की तत्त्व हैं–(1) शरीर, (2) इंद्रियाँ, (3) पदार्थ।

शरीर में रहकर आत्मा सुख-दुःख आदि का अनुभव करता है। इंद्रियाँ उस अनुभव में साधन हैं। बाहरी वस्तुओं का अनुभव किया जाता है। इन तीन प्रकार की चीजों से युक्त यह संसार अनादि और अनंत हैं। इस संसार की मूल सृष्टि और अत्यधिक प्रलय कभी नहीं होती है। केवल व्यक्ति जन्म लेते हैं और मरते हैं। इस में भी परमाणु के द्वारा व्यक्ति की उत्पत्ति मानी गई है। परन्तु न्याय दर्शन की भाँति परमाणु को वे अनुमानगम्य न मानकर इंद्रिय गोचर मानते हैं। वे अणु को सूक्ष्म नहीं मानते। परमाणु भी आँखों से दिखाई पड़ने वाले ही हैं। इसमें संसार को उसी रूप में स्वीकार किया गया है।

आत्मा :–यह कर्त्ता और भोक्ता दोनों है। वह व्यापक व प्रत्येक शरीर में भिन्न है। ज्ञान, सुख, दुःख आदि इसके गुण हैं। मीमांसक आत्मा में भी क्रिया मानते हैं। यह क्रिया दो प्रकार की होती है– स्पंद व परिणाम।

स्पंद का अर्थ है स्थान परिवर्तन करना और परिणाम का अर्थ है रूप परिवर्तन करना। आत्मा में स्थान परिवर्तन नहीं होता। आत्मा परिवर्तनशील होते हुये भी नित्य है। इसमें ज्ञान व अज्ञान दोनों होते हैं। इनमें ज्ञान-अंश से आत्मज्ञान का अनुभव होता है और अज्ञान

अंश से वह सुख-दुःख आदि का अनुभव करता है ।

धर्म :– इसके अनुसार धर्म के विषय में वेद ही सर्वश्रेष्ठ प्रमाण है । वेदों में धर्म का निर्णय करने की जितनी शक्ति है उतनी अन्य किसी में नहीं । सभी वेद वाक्य कर्म के लिये ही प्रेरित करते हैं । अतः वेद के बतलाये हुये यज्ञ आदि कर्म ही धर्म हैं । इन कर्मों को विधिपूर्वक करने में मुक्ति की उपलब्धि होती हैं । वेद में तीन प्रकार के निम्नलिखित कर्मों का वर्णन हैं–

(1) काम्य कर्म : – किसी फल प्राप्ति की इच्छा के लिये किये गये कर्म । जैसे – स्वर्ग प्राप्ति की इच्छा से यज्ञ करना ।

(2) निषिद्धकर्म : – इन कर्मों का वेद में निषेध किया गया है क्योंकि ये अनिष्ट फल देने वाले हैं ।

(3) नैमित्तिक कर्म : – ये वे हैं जो आवश्यक कर्म होते हैं । जैसे समय-समय पर अपने पूर्वजों को सम्मानित करना आदि । प्रत्येक कर्म में पुण्य व पाप पैदा करने की शक्ति है । कर्म के अनुसार पुण्य व पाप पैदा होते हैं और उनके द्वारा ही व्यक्ति सुख व दुःख भोगता है ।

मोक्ष : – संसार के साथ आत्मा का संबंध छूट जाना ही मोक्ष नाम से पुकारा जाता है । संसार के तीन बंधनों – शरीर, इंन्द्रियों और पदार्थों ने आत्मा को एक प्रकार से कैद में फंसा रखा है । शरीर, इन्द्रियां और विषयों का नाश वेद विहित नित्य नैमितिक कर्मों के सेवन से होता है और बंधन पैदा करने वाले धर्म अधर्म सर्वथा नष्ट हो जाने से आगे वे पैदा भी नहीं होते । अतः आत्मा को इस भौतिक संसार में आने की कोई आवश्यकता नहीं रह जाती ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि षट् दर्शनों में समन्वय स्थापित कर वेद के विचारों की दर्शनों में आई धारा को शुद्ध रूप दिया गया है ताकि वेद एवं वैदिक वाङ्मय का संबंध घनिष्ठ हो सके और यह दर्शनसाहित्य एक शृंखलाबद्ध रूप में संसार के दार्शनिकों के समक्ष प्रस्तुत हुआ है जिससे कि वेदों की धारणा को समझने में सुलभ कुंजी

प्राप्त हो गई है ।

निष्कर्षतः मीमांसा दर्शन के मुख्य तीन भाग हैं। पहला ज्ञानोपलब्धि के मुख्य उद्देश्य, साधन, दूसरा आध्यात्मिक, विवेचन, तीसरा कर्तव्याकर्तव्य की समीक्षा इसका अंतिम भाग है, स्वर्ग प्राप्ति के दो साधन हैं एक निष्काम कर्म और दूसरा आत्मिकज्ञान। इसके अतिरिक्त इसमें यज्ञों की दार्शनिक दृष्टि से व्याख्या की गई है। कुछ विद्वानों का विचार है कि आस्तिक दर्शनों में परस्पर विरोध है परन्तु इसके विषय में महर्षि दयानंद 'सत्यार्थप्रकाश' में लिखते हैं–

जैसे एक विद्या में अनेक विद्या के अवयवों का एक दूसरे से भिन्न प्रतिपादन होता है वैसे ही सृष्टि विद्या के भिन्न-भिन्न छः अवयवों का छः शास्त्रों में प्रतिपादन करने से इसमें कुछ भी विरोध नहीं है ।

दर्शनों के 25 अत्यंत महत्वपूर्ण सूत्र

योग दर्शन

1. **योगश्चित्त वृत्ति निरोधः** —1.2
   चित्त की वृत्तियों का निरोध ही योग है ।
2. **अभ्यास वैराग्याभ्यां तन्निरोधः** —1.12
   चित्त की वृत्तियों का सर्वथा निरोध करने के लिये अभ्यास और वैराग्य दो उपाय हैं ।
3. **ईश्वर प्रणिधान** —1.23
   ईश्वर की शरणागति का नाम ईश्वर प्रणिधान है ।
4. **वीतराग विषयं वा चित्तम् ।** —1.37
   जिस व्यक्ति के राग-द्वेष सर्वथा नष्ट हो चुके हैं, ऐसे विरक्त व्यक्ति को ध्येय बनाकर अभ्यास करने वाला अर्थात् उससे विरक्त भाव का मनन करने वाला चित्त भी स्थिर हो जाता है ।
5. **तपः स्वाध्यायेश्वर प्रणिधानानि क्रियायोगः** —2.1
   तप, स्वाध्याय एवं ईश्वर शरणागति ये तीनों ही क्रियायोग है ।
6. **अविद्यास्मितारागद्वेषाभिनिवेशाः क्लेशाः** —2.3
   अविद्या, अस्मिता (अभिमान) राग, द्वेष एवं अभिनिवेश (मृत्यु का डर) ये पांचों क्लेश हैं । इन का साधक को त्याग करना चाहिये ।

वैशेषिक दर्शन

7. **कारणाभावात् कार्याभावः** —4.1.3
   जब कारण नहीं तो कार्य भी नहीं होगा, क्योंकि कारण से ही कार्य हो सकता है ।
8. **अविद्या ।** —4.1.5
   नित्य को अनित्य एवं अनित्य को नित्य मानना ही अविद्या है ।
9. **अदुष्टं विद्या ।** —9.2.12
   जिस ज्ञान में दोष नहीं है वह ज्ञान विद्या कहा जाता है ।

सांख्य दर्शन

10. **ईश्वरसिद्धेः ।** —1.93
ईश्वर की सिद्धि भी इन्द्रियों से नहीं होती ।

11. **आप्तोपदेशः शब्दः ।** —1.101
ज्ञानी पुरुषों का शब्द प्रमाण होता है ।
(न्याय दर्शन 1.17)

12. **उभयात्मक मनः ।** —2.26
मन का संबंध पाँचों कर्मेन्द्रियों एवं पाँचों ज्ञानेन्द्रियों से होता है क्योंकि मन के बिना दोनों प्रकार की इन्द्रियाँ काम नहीं करतीं ।

13. **पञ्चभौतिको देहः** —3.17
मानव शरीर पाँचों भूतों—पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि एवं आकाश से बना है ।

14. **ज्ञानान्मुक्तिः ।** —3.23
चेतन अचेतन का ज्ञान होने पर ही मोक्ष की प्राप्ति होती है । उसी अवस्था को ज्ञान प्राप्ति कहा जाता है । उस समय आत्मा अपने रूप को जानने की इच्छा करती है ।

15. **जीवन्मुक्तकृश्च ।** —3.78
आत्मज्ञान की प्राप्ति होने पर अपने जीवन काल में ही व्यक्ति मोक्ष प्राप्त कर लेता है । वस्तुतः मोक्ष का अर्थ है अपने जीवन काल में ही आसक्ति से मुक्त होकर मानवता के कल्याण के लिये कार्यरत होना ।

न्याय दर्शन

16. **बाधनालक्षणं दुःखम् ।** —1.1.21
इच्छित वस्तु की प्राप्ति में बाधा ही दुःख है । संसार में केवल इच्छा का ही दुख है और कुछ नहीं ।

17. **अभ्यासात्** —2.2.30
अभ्यास से ही शब्द का नित्य होना सिद्ध होता है ।

18. **ज्ञानयोगेपद्यदेकं मनः ।** —3.2.60
एक समय में अनेक ज्ञानों की उपलब्धि नहीं हो सकती । इससे सिद्ध होता है कि मन एक ही है ।

19. **पूर्वकृतलानुबन्धत्तदुत्पत्तिः ।** —4.2.41

समाधि की सिद्धि पूर्व जन्मों के संचित कर्मफल के रूप में होती है । इसका कारण पूर्व संस्कार एवं अभ्यास है ।

वेदान्त दर्शन

20. **ज्ञोऽत एव ।** —2.3.18

आत्मा जन्म-मरण से रहित होने के साथ चेतन एवं ज्ञाता भी है क्योंकि परम्परागत संस्कारों के कारण जब वह जन्म लेता है तब बाल रूप में स्तनपान आदि में स्वयं प्रवृत्त हो जाता है । यह सब पूर्व जन्म के अभ्यास के कारण ही होता है ।

21. **फलमत उपपत्तेः ।** —3.2.38

कर्मफल परमात्मा से ही मानना उपयुक्त है क्योंकि यह मानव के हाथ में नहीं है ।

22. **ध्यानाच्च ।** —4.1.8

ध्यान में बैठकर ही प्रभु की उपासना होती है न कि चलते फिरते ।

23. **भूतेषु तच्छ्रुतेः ।** —4.2.5

आत्मा मरणोपरांत पंचभूतों में स्थित होता है ।

24. **विकारावर्ति च तथा हि स्थितिमाह** —4.4.19

मुक्त आत्मा तो विकार रहित परब्रह्म का ही अनुभव करता है ।

25. **अनावृत्तिः शब्दादनावृतिः शब्दात्** —4.4.22

जो आत्मा ब्रह्म को प्राप्त हो जाता है, वह संसार में लौटकर नहीं आता ।

दर्शनप्रश्नोत्तरी

प्रश्न 1. दर्शन कितने हैं और उनके क्या-क्या नाम हैं?

उत्तर दर्शन छः हैं जिन्हें शास्त्र या उपांग के नाम से भी पुकारा जाता है। ये निम्नलिखित हैं– योग दर्शन, वैशेषिक दर्शन, सांख्य दर्शन, न्याय दर्शन, वेदांत दर्शन, मीमांसा दर्शन।

प्रश्न 2. प्रत्येक दर्शन के लेखक और उसकी सूत्र संख्या बतलाइये।

उत्तर

दर्शन	लेखक	सूत्र संख्या
योग दर्शन	महर्षि पंतजलि	195
वैशेषिक दर्शन	महर्षि कणाद	369
सांख्य दर्शन	महर्षि कपिल	525
न्याय दर्शन	महर्षि गौतम	544
वेदांत दर्शन	महर्षि वेदव्यास	555
मीमांसा दर्शन	महर्षि जैमिनि	2644

प्रश्न 3. षट् दर्शनों की सूत्र संख्या कितनी है?

उत्तर 4832 सूत्र

प्रश्न 4. सबसे छोटा कौन सा दर्शन है?

उत्तर योग दर्शन।

प्रश्न 5. सबसे बड़ा कौन सा दर्शन है?

उत्तर मीमांसा दर्शन।

प्रश्न 6. भारतीय दर्शन के कितने भेद हैं और इसमें कौन-कौन से दर्शन आते हैं?

उत्तर भारतीय दर्शनों के दो भेद हैं–

(1) आस्तिक दर्शन – ये वेदानुकूल हैं और इन्हें आर्ष ग्रंथ माना जाता है। ये छः हैं–योग, वैशेषिक, सांख्य, न्याय, वेदांत, मीमांसा।

(2) नास्तिक दर्शन –वे वेदानुकूल नहीं है और न ही इन्हें आर्षग्रंथ माना जाता है। ये तीन हैं–चार्वाक दर्शन, बौद्ध दर्शन और जैन दर्शन।

प्रश्न 7. योग दर्शन के अनुसार मन की विभिन्न अवस्थाएं कौन-कौन सी हैं?

उत्तर मन की अधोलिखित पाँच अवस्थाएं होती हैं–

(1) मूढ़मन :– ऐसा मन मोह-माया में फँसा रहता है और यह विवेक शून्य होता है। इसमें तमोगुण की प्रधानता होती है।

(2) क्षिप्तमन :–ऐसा मन सुख-दुःख में फंसा रहता है और यह चंचल भी होता है और क्षिप्त दशा में डाँवाडोल रहता है। इसमें रजोगुण की प्रधानता रहती है।

(3) विक्षिप्तमन :–इसमें मन सुख के साधनों की ओर अधिक झुका होता है। यह मध्य की दशा है। इसमें मन दोनों ओर जाता है। इसमें सत्वगुण की प्रधानता रहती है।

(4) एकाग्रमन :–जब बाहरी वृत्तियों से हटकर मन एक वस्तु पर एकाग्र हो जाता है। तब उसे एकाग्र मन के नाम से पुकारा जाता है।

(5) निरुद्धमन :–सत्वगुण की अधिकता के कारण समाधि में मन अधिक उपयोगी हो जाता है। समस्त वृत्तियों एवं संस्कारों का सर्वथा निरोध हो जाने पर मन निरुद्ध कहलाता है।

प्रश्न 8. योग दर्शन के पाँच क्लेश कौन-कौन से हैं?

उत्तर अविद्यास्मितारागद्वेषाभिनिवेशः क्लेशाः –2.3

अविद्या, अस्मिता (अहंभाव), राग, द्वेष, अभिनिवेशः (मृत्यु

का डर) ये 5 क्लेश हैं जोकि व्यक्ति को सदा दुःखी करते रहते हैं । जिससे मन की एकाग्रता नहीं होती । इनके हटने से ही मन की एकाग्रता होती हैं ये सब अज्ञान से उत्पन्न होते हैं ।

प्रश्न 9. योग दर्शन के अनुसार योग के 8 अंग कौन-कौन से हैं ?

उत्तर ऊपरलिखित क्लेशों की निवृत्ति का साधन है—विवेक । इन की प्राप्ति के लिये आठ अंग हैं ।

1. यम :— इसका अर्थ है संयम । ये 5 हैं ।

(1) अहिंसा :—इसका अर्थ है कभी किसी व्यक्ति का बुरा न करना । न्यायपूर्वक दण्ड देना अहिंसा है परन्तु अन्यायपूर्ण दण्ड देना हिंसा है ।

(2) सत्य :—इसका अर्थ है कि मन, वचन और कर्म में समानता होना ।

(3) अस्तेय :—इसका अर्थ है चोरी न करना । आठ प्रकार की चोरियां होती हैं ।

(4) ब्रह्मचर्य :— इसका अर्थ है इन्द्रियों पर संयम रखना ।

(5) अपरिग्रह :—अनावश्यक वस्तुओं का संग्रह न करना ।

2. नियम :—ये भी 5 प्रकार के हैं ।

(1) शौच :—इस का अर्थ है शरीर एवं मन को शुद्ध रखना ।

(2) संतोष :— इसका अर्थ है जीवन निर्वाह के लिए अपेक्षित वस्तुओं के अतिरिक्त वस्तुओं की इच्छा न करना ।

(3) तप :— इसका अर्थ है कि सुख-दुख, सर्दी-गर्मी, भूख-प्यास आदि को सहज करने की शक्ति पैदा करना ।

(4) स्वाध्याय :—इसका अर्थ है आत्मनिरीक्षण एवं सद्ग्रंथों का अनुशीलन, मनन एवं आत्मसात् करना ।

(5) ईश्वरप्रणिधान :— इसका अर्थ है अपने सारे कर्मों को प्रभु समर्पण करके पूर्ण करना ।

3. आसन :– सुखपूर्वक बैठने के ढंग को आसन कहते हैं । जैसे सुखासन, पद्मासन आदि ।

4. प्राणायाम : – श्वास और प्रश्वास की गति रोकने को प्राणायाम कहते हैं ।

5. प्रत्याहार :– इंद्रियों को विषय से हटाना ही प्रत्याहार कहलाता है ।

6. धारणा : किसी वस्तु पर मन को लगा देना ही धारणा है ।

7. ध्यान : इसका अर्थ है मन की एकाग्रता । ध्यान लगाने की सरल विधि यह है कि व्यक्ति अपनी जीभ को मत हिलाए । इस प्रकार जब तक जीभ नहीं हिलेगी ध्यान लगा रहेगा ।

8. समाधि : विपक्षों से हटकर मन को विरुद्ध करना समाधि कहलाता है ।

प्रश्न 10 : योग दर्शन के अनुसार 8 सिद्धियाँ कौन-कौन सी है ?

उत्तर योग दर्शन के अनुसार 8 सिद्धियाँ निम्नलिखित हैं–

(1) अणिमा : अणु के समान सूक्ष्म रूप धारण कर लेना जैसे हनुमान जी ने सुरसा के मुख में और लंका में प्रवेश करते समय किया था ।

(2) लघिमा : शरीर को हल्का कर लेना । इसमें आकाश में उड़ने की शक्ति प्राप्त हो जाती है ।

(3) महिमा : शरीर को बड़ा कर लेना जैसे हनुमान जी ने सुरसा के सामने किया था ।

(4) गरिमा : शरीर को भारी कर लेना जैसे हनुमान जी ने भीमसेन के मार्ग में रुकावट डालने के समय किया था ।

(5) प्राप्ति : जिस किसी इच्छित भौतिक पदार्थ को संकल्पमात्र से ही प्राप्त कर लेना ।

(6) प्राकाम्य : बिना रुकावट भौतिक पदार्थ संबंधी इच्छा की पूर्ति अनायास हो जाना ।

(7) वशित्व : पाँचों भूतों और तज्जन्य पदार्थों का वश में हो जाना ।

(8) ईशित्व : भौतिक पदार्थों का अनेक रूपों में पैदा करने का और उन पर शासन करने का सामर्थ्य ।

प्रश्न 11: वैशेषिक दर्शन के अनुसार 7 पदार्थ कौन-कौन से हैं ?

उत्तर वैशेषिक दर्शन के अनुसार 7 पदार्थ निम्नलिखित हैं–

(1) द्रव्य :– द्रव्य उस वस्तु को कहते हैं जो गुण एवं कर्म का आश्रय हो। ये द्रव्य 9 हैं। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, काल, दिक्, आत्मा एवं मन ।

(2) गुण :– गुण द्रव्य में निवास करते हैं गुण का सीधा अर्थ है वस्तु में रहने वाला धर्म ये गुण संख्या में 24 माने जाते हैं ।

(3) कर्म :– कर्म का सीधा अर्थ है क्रिया । आँखों के द्वारा देखे जाने वाले द्रव्य में क्रिया अवश्य रहती है ।

(4) सामान्य :– इसका अर्थ है एक प्रकार की वस्तुओं में रहने वाला धर्म ।

(5) विशेष :– एक द्रव्य को दूसरे द्रव्य से भिन्न करने वाला धर्म विशेष कहलाता है ।

(6) समवाय :– प्रत्येक वस्तु का एक दूसरी वस्तु से संबंध होता है । यह संबंध दो प्रकार का होता है– संयोग और समवाय ।

(7) अभाव :– अभाव को पदार्थ मानना इस दर्शन की एक विशेष बात हैं ।

प्रश्न 12 : सांख्य दर्शन में आत्मा को किस नाम से पुकारा गया है?

उत्तर पुरुष ।

प्रश्न 13 : सांख्य दर्शन में कितने प्रकार की सृष्टि का वर्णन किया गया है ।

उत्तर सांख्य दर्शन में 14 प्रकार की सृष्टि का वर्णन किया गया है जिन में से 8 मनुष्य जीवन से उत्तम देव श्रेणी की है एक मनुष्य और 5 प्रकार के पश- पक्षी कीट आदि नीची श्रेणी के हैं ।

प्रश्न 14 : न्याय दर्शन के अनुसार 16 पदार्थों के विभिन्न नाम क्या-क्या है?

उत्तर 16 पदार्थ ये हैं—प्रमाण, प्रमेय, संशय, प्रयोजन, दृष्टांत, सिद्धांत, अवयव, तर्क, निर्णय, वाद, जल्प, वितण्डा, हेत्वभास, छल, जाति, निग्रह स्थान । इन 16 पदार्थों के वास्तविक ज्ञान से मुक्ति मिलती है ।

प्रश्न 15 : वेदांत-दर्शन का सार क्या है?

उत्तर वेदांत-दर्शन में आत्मा-परमात्मा, प्रकृति, पूर्वजन्म, मरने की पीछे की अवस्थाएँ कर्म, उपासना, ज्ञान, बंध एवं मोक्ष इन 10 विषयों पर प्रकाश डाला गया है । यही इसका सार है ।

प्रश्न 16 : वेदांत दर्शन को किन-किन विभिन्न नामों से पुकारा जाता है ।

उत्तर इसको वेदांत-दर्शन, ब्रह्मसूत्र, उत्तरमीमांसा, शारीरिक भाष्य आदि नामों से पुकारा जाता है ।

प्रश्न 17 : गीता में वेदांत 'शब्द' का उल्लेख किस अध्याय के किस श्लोक में हुआ है ।

उत्तर 15 अध्याय श्लोक 15 । जैसे—

सर्वस्य चाहं हृदि संनिविष्टो मतः स्मृति ज्ञानमपोहनं च ।
वेदेश्च सर्वैरहमेव वेद्यो वेदांतकृद्वेदविदेव चाहम् ।।

मैं सब के हृदय में अधिष्ठित हूँ स्मृति ज्ञान और उनका अपोहन (अर्थात् नाश) मुझ से ही होता है तथा सब वेदों द्वारा जानने योग्य मैं ही हूँ । वेदांत का कर्त्ता और वेदों का जानने वाला भी मैं ही हूँ ।

प्रश्न 18 : वेदांत दर्शन को सर्वश्रेष्ठ दर्शन क्यों माना जाता है ?

उत्तर क्योंकि इसमें मनुष्य के अन्दर ब्रह्म को जानने की जिज्ञास का वर्णन किया गया है । अतः यह सर्वश्रेष्ठ दर्शन ग्रंथ है ।

प्रश्न 19 : मीमांसा के 6 प्रमाण कौन-कौन से हैं ?

उत्तर वे ये हैं—प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, शब्द, अर्थापत्ति, अनुपलब्धि ।

प्रश्न 20 : योग दर्शन का प्रथम सूत्र कौन सा है ?

उत्तर अथ योगानुशासनम् ।

अब परम्परागत योग विषयक शास्त्र आरम्भ करते हैं ।

प्रश्न 21 : वैशेषिक दर्शन का प्रथम सूत्र कौन सा है ?

उत्तर अथातो धर्म व्याख्यास्याम् ।

अब धर्म की व्याख्या करते हैं ।

प्रश्न 22 : सांख्य दर्शन का प्रथम सूत्र कौन सा है ?

उत्तर अथ त्रिविध दुःखात्यन्तिनवृत्तिरत्यन्त पुरुषार्थः ।

अब तीन प्रकार के दुःखों आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक का न होना ही प्राणी का मुख्योद्देश्य है । चार प्रकार के पुरुषार्थ—धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष है और इन में से मोक्ष सर्वोत्तम पुरुषार्थ है ।

प्रश्न 23 : न्याय दर्शन का प्रथम सूत्र कौन सा है ?

उत्तर प्रमाण प्रमेय संशय प्रयोजन दृष्टांत सिद्धांतावयवतर्क निर्णयवादजल्प विताण्डा हेत्वा भास छलजति निग्रहस्थाना तत्व ज्ञानान्निश्रेयसाधिगमः ।

प्रमेय संशय आदि 16 प्रकार के प्रमाण कहे गये हैं । न्याय में ही 16 पदार्थ माने जाते हैं । जिस साधन से प्रमाता विषयों में को प्राप्त करता है उस साधन को प्रमाण और ग्रहण किये जाने वाले विषयों को प्रमेय कहते हैं । इन सब के तत्व को भली प्रकार जान लेने से मोक्ष की प्राप्ति सुलभ हो जाती है ।

प्रश्न 24 : वेदांत का प्रथम सूत्र कौन सा है?

उत्तर अथातो ब्रह्मजिज्ञासा ।

अब ब्रह्म के जानने की इच्छा करनी चाहिये ।

प्रश्न 25 : मीमांसा दर्शन का प्रथम सूत्र कौन सा है?

उत्तर अथातो धर्म जिज्ञासा ।

अब धर्म की जिज्ञासा करनी चाहिए ।

लेखक द्वारा प्रकाशित एवं निःशुल्क वितरित पुस्तकों की सूची :–

1. रामचरितमानससार
2. गीतासार
3. उपनिषद्सार
4. सत्यार्थप्रकाशसार
5. भक्ति
6. सुखीजीवन
7. आत्मबोध
8. वेदवाणी
9. वैदिकसाहित्य
10. अमृतवाणी
11. महर्षि दयानंद
12. स्वामी विवेकानंद
13. शरणागति
14. वैदिक रामायण
15. क्या आप जानते हैं ?
16. शेर-ओ-शायरी

लेखक द्वारा अप्रकाशित पुस्तकों की सूची :–

1. वैदिक उपनिषद्वाणी
2. वैदिक दर्शनवाणी
3. वैदिक महाभारत
4. वैदिक गीता
5. अमर धर्मग्रंथ
6. अमर नीतिग्रंथ
7. पुराणपरिचय
8. ईश्वरसिद्धि
9. राष्ट्रभाषा हिन्दी
10. मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम
11. महावीर हनुमान
12. योगिराज श्रीकृष्ण
13. आदिशंकराचार्य
14. आचार्य चाणक्य
15. दस गुरु
16. आर्यसमाज के महामानव
17. स्वामी रामतीर्थ
18. संस्कार
19. गीतांजलि
20. आर्यसमाज
21. ओ३म्
22. गायत्रीरहस्य
23. ज्ञानामृत
24. यज्ञ
25. संत
26. संतवाणी
27. सामान्य हिन्दी (भाग I-II)
    (सब कक्षाओं के लिये)
28. **Great Thoughts**
29. **General English (Part I to V)**
    (For All Classes)